अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

मासिक पत्रिका

मई-जून 2023

(संयुक्तांक)

अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेंद्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य
मासिक पत्रिका
मई-जून 2023 (संयुक्तांक)
भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ॰ जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार
बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग
आभा खरे / स्वरांगी साने

व्यवस्था
अमित खरे / गीता घिलोरिया

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

संपर्क
रचनाकार अपनी रचनाएँ अनन्य में प्रकाशनार्थ यहाँ भेजे : sampadak.ananya@gmail.com

पाठक अपनी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव यहाँ भेजें
pratikriya.ananya@gmail.com

Artist: Sudhir Patwardhan,
'Lockdown Couple' 2020, acrylic and oil on canvas, 40x48 in.

सुधीर पटवर्धन का यह चित्र महामारी के दौरान चित्रित किया गया है, "महामारी के शुरूआती चरण के दौरान, श्रमिकों को अपने गाँवों और क़स्बों में वापस लौटने की कठिनाइयों को देखना उन्हें परेशान कर रहा था। उस समय बाहर न निकलने की मजबूरी थी जो दुर्भाग्यवश आदत बनती गई। इसका असर यह हुआ कि धीरे-धीरे क़ैद और लाचारी अंदर उतरने लगी।"

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप विडियो रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

संपादकीय — 06
अनूप भार्गव

गीत/नवगीत : यतीन्द्रनाथ राही — 08
पाँच नवगीत

माहिया : प्रीति गोविंदराज — 13

कहानी : डॉ. उषाकिरण ख़ान — 15
'मुझे माफ़ करना, शिमोनी'

ग़ज़ल : दिनेश सिंदल — 22
सात ग़ज़लें

गीत/नवगीत : डॉ. संतोष व्यास — 25
पढ़ बेटी!

कविता : संध्या सिंह — 26
दो कविताएँ

साहित्यिक विरासत : प्रेमचंद — 28
मूर्खों के हाथ बड़ा साइंस 'सिनेमा'

लोक जीवन : वंशीधर शुक्ल — 32
अवधी लोकगीत

कविता : डॉ. देवकीनंदन शर्मा — 34
दो कविताएँ

कला : अशोक कुमार सिन्हा — 36
बावन बूटी कला के प्रकाश स्तम्भ : कपिलदेव प्रसाद

इस अंक के चित्रकार : — 44
सुधीर पटवर्धन - कवर पृष्ठ : लॉकडाउन कपल-2020 — **अग्र भाग**
गिरीश चंद्र बेहरा - पृष्ठ भाग : वन्डरिंग आइसलैंड — **पृष्ठ भाग**
एवं अंदर सभी रेखांकन

मेरी बात...

आज से ठीक एक साल पहले हमने एक स्वप्न देखा था, देश से दूर बैठ कर हिंदी की एक अलख जगाने का स्वप्न । इस माह हमारे उस स्वप्न की पहली वर्षगाँठ है।

यों तो समय के अनुसार बनाए गए मील के पत्थरों का कोई महत्व नहीं होता लेकिन वह हमें एक अवसर देते हैं अपना आत्म निरीक्षण करने का, हमने क्या सोचा था, क्या हमारी अवधारणाएँ थीं, क्या हमारे लक्ष्य थे, क्या हमारे स्वप्न थे और इन सब की दृष्टि में क्या हमने हासिल किया, क्या हमारी ग़लतियाँ रह गईं, कहाँ हमें सुधार की ज़रूरत है और आगे कहाँ हमें जाना है?

आज कुछ यही करने का मन कर रहा है ....

हमने जो स्वप्न देखा था वह आसान नहीं था। जब हमने यह प्रयास शुरु किया तो हमारे पास कुछ भी नहीं था। हम भारतीय कौंसलावास के आभारी है कि उन्होंने हमें पत्रिका के लिए घर दिया, हमारा उत्साह बढ़ाया लेकिन कोई भी आर्थिक मदद न तो हमने उनसे माँगी और ना ही हमें मिली। हम गर्व से कहते हैं कि हमारा कोई बैंक अकाउंट ही नहीं है। बिलकुल शून्य बजट है हमारा – न हम किसी से कुछ लेते हैं और न ही किसी को कुछ दे पाते हैं। इसके बावजूद यदि कुछ अच्छा सामने आता है तो वह हमारा 'हिंदी से प्यार है' और उस प्यार से उत्पन्न ऊर्जा का परिणाम है। इस के लिए पूरी सम्पादकीय टीम बधाई की पात्र है लेकिन विशेष रूप से सम्पादक डॉक्टर जगदीश व्योम, कला सम्पादक विजेंद्र एस. विज और सहयोग में आभा खरे का नाम लेना चाहूँगा। इस एक वर्ष में हमने बहुत कुछ सीखा, पहली बात तो यह कि पत्रिका को शुरु करना और उसका प्रवेशांक निकालना आसान है लेकिन उसी पत्रिका को नियमित रुप से हर माह निकालना आसान नहीं है। हमारे कुछ अंक देर से आए और कुछ अंको में हम वह सब सामग्री नहीं दे पाए जो हम चाहते थे। हम आगे से बेहतर करने का प्रयास करेंगे।

इस पिछले वर्ष में एक दूसरा प्रयास जो हमने किया वह था अनन्य के पंख दूसरे देशों में फैलाने का। आज अनन्य विश्व के 12 देशों से निकल रही है और तीन नए देश हम शीघ्र ही जोड़ने जा रहे हैं। इन १२ देशों से निकलने वाली अनन्य पूरी तरह से स्थानीय प्रयासों का परिणाम है – स्थानीय सम्पादक मंडल, स्थानीय लेखक, स्थानीय कला और साज सज्जा, स्थानीय ख़ुशबू। हम यह नहीं कहते कि इन सब अंकों में सभी सामग्री उच्च स्तर की है लेकिन इन देशों से हिंदी पत्रिका निकलना ही एक उपलब्धि है। जब भारत से बाहर हिंदी की बात होती है तो अक्सर अमेरिका से शुरु होकर यूरोप के कुछ देशों को

छूती हुई ऑस्ट्रेलिया में खत्म हो जाती है। हमें गर्व है कि हम अफ़्रीका के तंजानिया और केन्या जैसे देशों से हिंदी की पत्रिका निकाल रहे हैं। इन देशों में भारत और हिंदी से प्रेम करने वाले बहुत से भारतीय और ग़ैर भारतीय हैं – ज़रूरत थी सिर्फ़ उन्हें एक मंच देने की और वह अनन्य ने उन्हें दिया। यहाँ एक बार फिर से अनन्य का सूत्र वाक्य दोहराना चाहूँगा –

'अनन्य' दुनिया के हर देश में 'हिंदी' का एक, छोटा सा बीज बोने का प्रयास है । यह बीज एक स्थानीय मासिक पत्रिका के रूप में शुरु होता है और कालांतर में इस बीज से पल्लवित वृक्ष में उस देश की कला, संस्कृति, प्रवासी साहित्य, अनुवाद, स्थानीय अनुभव, त्योहार और अन्य आयामों की हरित शाखाओं का विकास हो सकेगा - यह हमारा दूरगामी स्वप्न है। अनन्य का मंच इन सब स्थानीय प्रयासों को एक वैश्विक प्रांगण देगा – यह हमारा विश्वास है।

एक और बात जो हम करना चाहते हैं और इस दिशा में प्रयास शुरू हो गए हैं। हमने अपने अनुभव से देखा है कि लगभग हर देश में कुछ ऐसे विद्वान हैं जो भारत के बारे में कई बार भारतीयों से अधिक जानते हैं, वह भारत के बारे में भावुकता से नहीं, वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं। उनके साथ मुश्किल यह है कि वह सब हिंदी में नहीं लिख सकते। हम उनके द्वारा स्थानीय भाषा या अंग्रेज़ी में लिखे गए आलेखों का हिंदी में अनुवाद करके अनन्य के माध्यम से उन्हें 'विश्व पटल' पर लाने का प्रयास कर रहे हैं। हमारा स्वप्न है कि अभी भारत के बारे में जो ज्ञान और जानकारी का आदान-प्रदान और परिचर्चा अंग्रेज़ी के माध्यम से हो रही है – वह हिंदी के माध्यम से हो। हम जानते हैं कि यह बड़ा स्वप्न है लेकिन सपने तो बड़े ही होने चाहिए ना?

हमारी बात तब तक पूरी नहीं होगी जब तक हम हमारी चुनैतियों और मुश्किलों की बात न करें। हमारे सामने सब से बड़ी चुनौती है – अपने आप को उत्साहित रखने की। पत्रिका को निकालना हममें से किसी का भी व्यवसाय नहीं है। हम सबकी अपनी-अपनी नौकरियाँ और परिवार हैं। वह भी समय माँगते हैं। ऐसे में नियमित रूप से पत्रिका के लिए समय निकाल पाना एक चुनौती है। यह काम सरल हो सकता है – यदि हमें आप सबका अधिक सहयोग मिले । हमें सम्पादन के अलावा पत्रिका के लिए और भी कई क्षेत्रों में सहायता की ज़रूरत है। यदि आप हर माह हमें नियमित रूप से कुछ घंटे दे सकते हैं तो अपने बारे में कुछ बताते हुए हमें ananya.sampadak@gmail.com पर लिखिये।

अभी बस इतना ही

अनूप भार्गव
प्रबंध संपादक - अनन्य

यतीन्द्रनाथ राही

भारौल, मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) में जन्में और भोपाल(मध्य प्रदेश) में रह रहे यतीन्द्रनाथ राही जी सुप्रसिद्ध नवगीतकार हैं। सेवानिवृति के बाद बतौर संपादक एवं प्रकाशक कार्यरत यतीन्द्रनाथ जी के 10 गीत/नवगीत संग्रह, 5 काव्य संग्रह के अतिरिक्त खण्ड-काव्य, दोहा, बाल-गीत और ग़ज़ल के 5 संग्रह प्रकाशित हैं।

ईमेल - newsoutin1@gmail.com

गीत/नवगीत

-यतीन्द्रनाथ राही

1. रीती गागर

माथे पर पर्वत चिन्ता के
आँखों में सागर के सागर
बैठे हो सूने पनघट पर
लिये हाथ में रीती गागर !

रहो देखते मत लहरों को
छाती अड़ा धार को बदलो
तूफानों के रुख़ मुड़ते हैं
अगर मुट्ठियाँ अपनी कस लो
लक्ष्य सिमटकर झुक जाते हैं
कर्मशील कदमों पर आकर !

दर्प टूटते तटबन्धों के
खण्ड-खण्ड पाषाण शिलाएँ
गति के पंथ बुहारा करतीं
निष्ठाओं की दृप्त शिराएँ
गर्वित वर्तमान लिखता है
नव आगत के स्वर्णिम आखर !

निन्दा-रस पिलपिले अहम ये
क्षुद्र-ज्ञान कुंठित संलापन
खाली हाथ बाँटते फिरते
थोथे इन्द्र धनुष आश्वासन
मोह-पाश स्वर्णिम छलनाएँ
अन्धकार के दुर्गम गह्वर !

2. याद गाँव की आयी

साँझ भई
पाँखी घर लौटे
फिर-फिर याद
गाँव की आयी

उँगली पकड़ पिता की हमने
जग को जाना
पर्वत लाँघे

दादी की गोदी में चढ़कर
नभ के चाँद-सितारे माँगे
त्योहारों की धूम
फाग की मस्ती
वह, अब कहाँ मिलेगी?
निश्छल मन की
वह अल्हड़ता
महानगर में कहाँ खिलेगी?

वह विरहा की तान
मल्हारें
रस- डूबी शहनाई !
फिर-फिर याद...

रिश्तों की पावन मर्यादा
कसे-गसे रेशम के धागे
एक हाँक में जुट जाते थे
सोये हों या हों हम जागे
एक प्यार सबकी भाषा थी
जड़-जंगम सारे अपने थे
चिन्ता-मुक्त नींद होती थी
तृप्ति-भरे मीठे सपने थे

कैसे चित्र सहेजें उनके
मेघ-घटा
पलकों में छायी !
फिर-फिर याद...

किसी जनम में नहीं मिलेगी
वह जीवन्त स्वर्ग-सी दुनिया
कानों में गूँजा करती हैं
माँ की लाड़-भरी अनुध्वनियाँ
वे स्पर्श, डाँट, वे आँखें
सागर के सागर थे उनमें
कितना पिया
सँभाल सकूँगा
कैसे इस छोटे जीवन में

माँ तो
ग्रन्थों की गुरुगरिमा
कैसे जाये कभी भुलाई!
फिर-फिर याद...

3. गाँव अपना छोड़ कर

क्यों चले आये यहाँ हम
गाँव अपना छोड़ कर!

दूरियाँ तो जगत की थीं
मुट्ठियों में बाँध लीं
शब्द-शिष्टाचार था
संवेदनाएँ बाँट लीं
किन्तु ये जो नागफनियाँ
नफरतों की हैं
दंश धरती, जहर भरती
दहशतों की हैं
कौन इनमें उलझते
दामन बचायेगा
कौन गिरती देह
टूटे तन जुड़ायेगा

प्रश्न मुँह फाड़े खड़े हैं

शहर के हर मोड़ पर
क्यों चले आये ...

भीड़ के सैलाब हैं
पर आदमी मिलता नहीं
इन घटाओं में नहीं है
प्यार का कतरा कहीं
नाम अपने ही पड़ोसी का
नहीं हम जानते
विश्व मानव प्रेम के
तम्बू हवा में तानते
नाच लो, गाओ, हँसो,
रोते रहो सिर फोड़कर

है किसे फुर्सत
तुम्हारे पास आये दौड़कर
क्यों चले आये ...

यह शहर है
गीत मत गाओ
यहाँ चौपाल के
घाट गंगा के नहीं हैं
ताल हैं भोपाल के
वादियों की शांति में
अब कुछ हवाएँ
बदचलन
द्वार पिछले खोलकर
करने लगी हैं संचरण
कौन जाने
कब कहाँ
तूफान फिर झकझोर कर
जिंदगी रख दे
सड़क पर
यों मसलकर
तोड़कर
क्यों चले आये ...

4. जाने, क्या कहने का मन है

फिसल रहे हैं
शब्द अधर से
जाने, क्या कहने का मन है!

कुछ
वासन्ती ऋतु शर्मीली
कुछ
सुधियों का मतवालापन
मुक्त कुन्तला
मधु गन्धों का
प्राणों में प्राणों का अर्पण
बाँहों में
बाँधे तरुवर को
अल्हड़ लता
काँपती थर-थर
झूल रहे हैं।
झूम-झूमकर
अमलताश के
स्वर्णिम झूमर

डूब-डूबकर इस निसर्ग में
बस योंही
बहने का मन है

जाने, क्या कहने...!

पर,
मन तो मन है
उड़ता है
धरती कहाँ दिखाई देती
दहकी आग
पसरती नफरत
राजनीति की बर्बर खेती
आँखों पर चश्में नौ रंगी
कानों में घुलते यश-गायन
कुर्सी की खातिर है यस सर !
कुर्सी की खातिर पालागन

बुरा नहीं
मिल जाय अगर तो
ऐसे भी रहने का मन है
जाने, क्या कहने...!

अपनी चाल गोटियाँ अपनी
फिट करने का अपना ढँग है
समझ नहीं आता
रेले में
कौन जा रहा
किसके सँग है
जिसका जैसा पात्र भरेगा
सुधा, वारुणी, विष जो भाये
धन्य वसन्त !
साथ में अपने
कुंभराज को लेकर आये
हाथ धरो!

जो भी, यश-अपयश
आज वही
गहने का मन है
जाने, क्या कहने...!

5. चारो और नौतपा जलता

एक अगन क्या कम मौसम की
एक सियासत ने धर दी है
चारो ओर नौतपा जलता
कहाँ चैन के दो क्षण पायें!

बाहर भीतर तपन भरी है
छप्पर-छानी में अंगारे
लगा लुकाटी दूर खड़ा है
रे शातिर सूरज बजमारे!
भूल गयी पथ भटकी नदिया
तड़पी-मरी मछरिया प्यासी
सिंहासन की आग जल रहे
भोगी, योगी, शठ-संन्यासी

शान्ति नहीं मिलने की ऐसे
कैसे कहाँ इन्हें समझायें
कहाँ चैन के...!

मुरझाये,
पादप द्रुभ-पल्लव
जरे-जरे से काले चेहरे
हिवड़ा फटा धरा का जाने
बादल कौन लोक में ठहरे
सूखे ताल, पोखरे, झीलें

तीखी सुर्ख किरन की कीलें
चुल्लू में भर-भरकर बोलो
कितनी मृगतृष्णाएँ पीलें?

राजाजी तो आसमान में
लिप्साओं की फसल उगायें
कहाँ चैन के...!

महापर्व है प्रजातन्त्र का
खण्डित मूल्य
ध्वस्त प्रतिमाएँ
घाट-घाट की बिकी सीढ़ियाँ
जाकर डुबकी कहाँ लगायें ?
मरा-मरा आँखों का पानी
पथराया ममता का झरना
नंगी खड़ी आदमीयत को
सिंहासन का भी क्या करना?

तनिक कसो घोड़ों को सूरज !
ऐसे पंथ-कुपंथ न जायें !
कहाँ चैन के...!

-यतीन्द्रनाथ राही

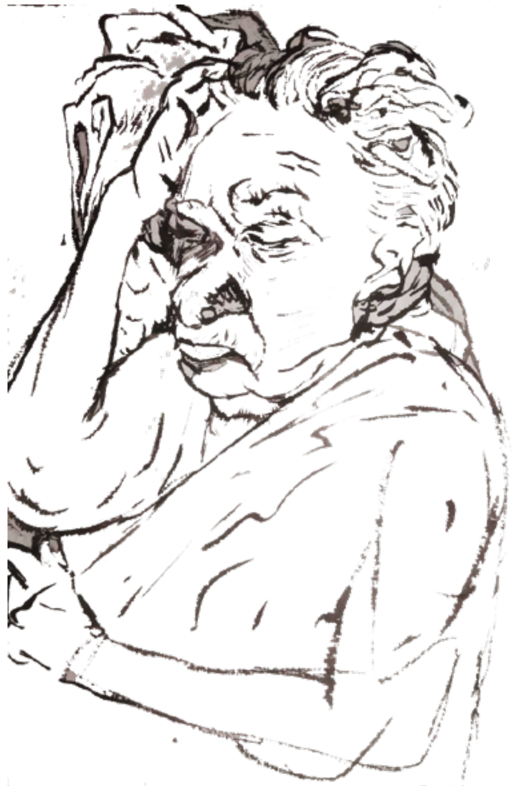

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

प्रीति गोविंदराज

दिल्ली में जन्मीं और वर्तमान में वर्जीनिया, अमेरिका में रह रहीं प्रीति गोविंदराज, जार्जटाउन यूनिवर्सिटी अस्पताल के कैंसर सेंटर में कार्यरत हैं। कविता, कहानी, हाइकु, माहिया, संस्मरण और ग़ज़ल विधा में सृजनरत प्रीति गोविंदराज हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में समान रूप से लेखन कर रहीं हैं। दो काव्य संग्रह प्रकाशित। विश्व हिन्दी सचिवालय द्वारा पुरस्कृत/ सम्मानित।

ईमेल- preethigovindaraj2@gmail.com

माहिया

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

-प्रीति गोविंदराज

1.

संदेश हवा लाये
उनके आँगन की
खुशबू बिखरा जाये

2.

धुन बाजे रागों की
बुनती जब लहरें
झालर ये झागों की

3.

लौ देखूँ चाहत की
आँखों में उनके
लूँ साँसें राहत की

4.

दोनों पलड़े भारी
पी-घर या पीहर
किस ओर झुके नारी!

5.

बूँदें हल्की-हल्की
बरसे प्रेम-सुधा
नभ की गगरी छलकी

6.

बन जाते हैं जोगी
कह ऊँची बातें
ये वैभव के भोगी

7.

मुस्काती अँखियों से
बाँधा जो नाता
कह दूँ क्या सखियों से!

8.

दुखती जोड़ें भूली
खेलूँ पोती सँग
थोड़ी साँसें फूलीं

9.

हम जान नहीं पाये
दिल झूठा उनका
सच कह के पछताये

10.

आँखों का नम होना
बिन बोले समझे
आँचल का इक कोना।

-प्रीति गोविंदराज

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

डॉ. उषाकिरण खान

लहेरिया सराय, दरभंगा (बिहार) में जन्मी, पटना विश्वविद्यालय से एम.ए. और मगध विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. डिग्री धारी, पद्मश्री डॉ. उषाकिरण खान हिन्दी व मैथिली साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। बी.डी कॉलेज, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य से जुड़ी रहीं उषाकिरण खान जी के 9 हिन्दी कहानी संग्रह, 3 मैथिली कथा संग्रह, 10 हिन्दी उपन्यास , 6 मैथिली उपन्यास के अतिरिक्त कथेतर गद्य, बाल साहित्य, कहानी संकलन, नाटक, खण्ड काव्य और अनुवाद सहित लगभग 22 पुस्तकें प्रकाशित हैं। दिनकर राष्ट्रीय पुरस्कार, बिहार राजभाषा का महादेवी पुरस्कार,भारत भारती पुरस्कार, मैथिली साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित हिन्दी व मैथिली के कई प्रतिष्ठित संस्थाओं से अनेक पुरस्कार/सम्मान प्राप्त हैं।

ईमेल - ushakirankhan@yahoo.co.in

मुझे माफ करना, शिमोनी

-डॉ. उषाकिरण खान

"तुमने बच्चों की तरह मिनी स्कर्ट में रुमाल दबा रखा था। उसे निकालकर अपने अश्रुसिक्त आँखें पोंछने, लगी थी। नन्ही-सी लम्बाई की तुम पूरी गदराई युवती-सी लग रही थी, सिर्फ तुम्हारा चेहरा किशोर उम्र की चुगली-सा खाता था। तुम्हारे भरे-भरे शरीर के ऊपर सुराही-सी गर्दन और गोल मासूम चेहरा अत्यन्त आकर्षक था। काले-चमकीले लम्बे बाल थे, जिनकी दो चोटियाँ सामने वक्षस्थल पर झूल रही थीं। लाल-पतले अधरों में बेइन्तिहा कशिश थी। .."

उस भूरी खूबसूरत भव्य इमारत के सहन में मैं खड़ी थी। सहन के दोनों ओर चौड़ी सीढ़ियाँ थीं। कॉलेज गर्मियों की छुट्टियों के बाद खुला था। नये सेशन की शुरुआत थी। चारों ओर लड़कियाँ तितलियों की तरह फुदक रही थीं। प्रिंसिपल ने मेरी ड्यूटी लगा रखी थी लड़कियों पर नजर रखने की। जैसा कि अकसर होता है, प्रथम वर्ष में प्रवेश पाने वाली छात्राओं की पुरानी छात्राएँ जमकर रैगिंग करतीं। यह रैगिंग कभी-कभी सीमा पार कर जाती। हममें से किसी की ड्यूटी प्रतिदिन लगा करती। मैंने चाय के रंग की आरगंडी पर गहरे भूरे रंग के रेशम की कढ़ाई

वाली साड़ी पहन रखी थी। अपने घुँघराले बॉब केश कसकर पीछे बाँध रखे थे और कमर पर हाथ रखे सामने वाले गोल कमल ताल को निरख रही थी। दाहिनी ओर बोगनबेलिया सूखकर सीढ़ियों पर रंगीन क्रेप कागज की कतरनों की तरह पसरी थी। सफाई करने वाली अभी-अभी सूखे फूलों को बटोरकर खाँचे में भर रही थी। मैं अकसर कमल ताल की ओर देखती रहती। माधवी लता का कोमल गझिन पुष्प, पुष्पों का हल्का गहरा गुलाबी रंग, जाती हुई किशोरियों का झुंड मुझे अलमस्त, तुनुक और आशाओं से परिपूर्ण बनाते।

"दीदी, आप आगे खड़ी हैं कमर पर हाथ देकर और उधर पीछे लड़कियाँ हंगामा मचाये हुए हैं।" दौड़ती हुई सुखिया दाई आयी थी। मैं बदहवास-सी पीछे की ओर भागी। चारों ओर से गोल घेरा बनाकर लड़कियाँ क्रूर ठहाके लगा रही थीं और उस बीच तुम डबडबाई आँखों में खड़ी कुछ बोलने का प्रयास कर रही थीं। "आप लोग हट जाइए, रास्ता दीजिए" –मैंने अपनी सहज मुद्रा में कहा था। कॉलेज की छात्राएँ मुझसे रौब खाती थीं। धीरे-धीरे सब हट गयीं। तुम्हारे रक्ताभ कपोल पर दो मोटे-मोटे अश्रुबिन्दु लुढ़क आये थे।

"नो-नो, नहीं रोते, लोग क्या कहेंगे कि कॉलेज में चली गयी लड़की और रोती है? चलो मेरे साथ।" मैंने तुमसे कहा था और तुम यन्त्रवत् मेरे पीछे-पीछे चली आयी थी। मैं फिर बालकनी में आकर खड़ी हो गयी थी। तुमने बच्चों की तरह मिनी स्कर्ट में रुमाल दबा रखा था। उसे निकालकर अपने अश्रुसिक्त आँखें पोंछने, लगी थी। नन्ही-सी लम्बाई की तुम पूरी गदराई युवती-सी लग रही थी, सिर्फ तुम्हारा चेहरा किशोर उम्र की चुगली-सा खाता था। तुम्हारे भरे-भरे शरीर के ऊपर सुराही-सी गर्दन और गोल मासूम चेहरा अत्यन्त आकर्षक था। काले-चमकीले लम्बे बाल थे, जिनकी दो चोटियाँ सामने वक्षस्थल पर झूल रही थीं। लाल-पतले अधरों में बेइन्तिहा कशिश थी। मुआयना करने वाली मेरी नजर से तुम सहम-सी गयी थी। "क्या नाम है तुम्हारा?" मैंने पूछा था।

"शिमोनी।"

"बड़ा पिक्यूलियर नाम है।"

"जी, इसीलिए तो सीनियर्स चिढ़ा रही थीं। तुमने अपनी घनी बरौनियों को झुकाते हुए कहा था।

'अच्छा! ! और मैं चुप हो गयी थी, कहीं तुम मेरे प्रश्नों से अधिक असहज न हो जाओ।' चाहे जो भी हो, अर्थ तो तुम्हारे इस नाम का है बड़ा प्यारा।' मैंने मन-ही-मन कहा था। एक सिम्फनी-सी है-स्वागत-भाषण की मेरी आदत है!

"तुम्हारा चेहरा देखा-देखा लगता है। तुमने कहाँ से स्कूल पास किया है? ' मैंने फिर पूछा था तुमसे।

"जी, धनबाद से।"

"अच्छा! मैं सोचने लगी थी, तब तुम्हें कैसे देखा? कहाँ देखा?"

'जी, मिस, मैं नृत्य करती हूँ। यहाँ के स्टेज पर भी नृत्य कर चुकी हूँ। हो सकता है, आपने देखा हो।' तुमने अपनी स्कूल वाली आदत के अनुसार मुझे सम्बोधित किया था।

"मिस नहीं, मैडम या दीदी कहो। मेरा नाम चित्रा है। चित्रा दी कहो।"

"सारी!" तुम्हारी पलकें एक बार फिर काँपी थी।

"हाँ, ठीक कहा; मैंने तुम्हारा नृत्य देखा था। मैं भी कितनी भुलक्कड़ हूँ।"

"मैंने तो एक रिपोर्टिंग भी तैयार की थी। मैंने फिर अपने आपसे कहा था। अनायास मैं तुम्हारी ओर इतनी हद तक आकृष्ट क्यों हो गयी थी, इसका कारण अब जान पड़ा था। नृत्य देखती हुई तो मैं इतनी बड़ी हुई हूँ, एक-से एक प्रसिद्ध नृत्यांगनाओं का नृत्य। लेकिन तुम एक ताजा खिले गुलाब -सी लगी थी उस दिन। दक्षिण पवन के अलस मंदिर झोंके से आलोड़ित होती गुलाब की अर्द्धप्रस्फुटित कलिका। और तुमसे हाथ मिलाता हुआ समारोह का वह मुख्य अतिथि अनायास मुझे नहीं अच्छा लगा था। क्यों अच्छा नहीं लगा था, वह न उस दिन बता सकती थी, न आज ही बता सकती हूँ, शिमोनी! दीर्घकाय साँवला शरीर और रोमल हाथ के द्वारा जूही की कली के समान तुम्हारा कोमल हाथ पकड़कर बधाई देना नहीं भाया था कि तुम्हारे गदराये शरीर की लास्यभंगी पर फिसलती उनकी अतृप्त आँखें नहीं भायी थी। तुम्हारा सौ जान से निछावर होकर उससे बधाई स्वीकार करना भी नहीं भाया था, एक झटके से उसकी बाहों में आकर संकुचित हो जाना नहीं भाया था। नहीं जानती, क्यों? लेकिन मैं आज भी कह सकती हूँ, अनजाने-अनचाहे वह दृश्य मुझे नहीं भाया था।

उस दिन के समारोह का वह मुख्य अतिथि अलग से तो मुझे आकृष्ट करता था, तुम अलग से करती थी। किन्तु एक साथ नहीं।

"तुम्हारे साधारण-से दीखने वाले माता-पिता की ओर मुड़कर वह अपनी सहृदयता का सौदा उसी वक्त तौलने लगा था। क्या आप लोगों के पास गाड़ी है?" उसने पूछा था।

"जी नहीं; हम लोग चले जाएँगे।" तुम्हारे पिता ने कहा था।

मुख्य अतिथि से तुम बातें कर रही थी, अत: आयोजक वहीं आसपास डोल रहे थे।

"हम इन्हें पहुँचा देंगे, सर!" एक आयोजक तत्परता से बोल उठा था। तब वह मुख्य अतिथि मन मसोस कर रह गया।

"आपका नाम क्या हुआ, मि...?" उसने पूछा था तुम्हारे पिता से।

विश्वास, सर, पी. विश्वास! ' तुम्हारे पिता ने उसके सामने दयनीय-सा झुकते हुए कहा था। उसने तत्काल अपनी निजी नोटबुक में तुम्हारे पिता का पता नोट कर लिया था। जाते-जाते उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ी।

"ओह, चित्रा! तुम कैसे आयी हो? क्या आंटी भी हैं?" उसने बिना झंपे मुझसे पूछा था, जैसा वह अक्सर मेरे सामने हो जाता था।

"नहीं" - मैंने सख्त-सी होकर कहा था। वह मेरा पड़ोसी था और हम साथ-साथ पढ़ते भी थे। एक ही कक्षा में, एक ही विश्वविद्यालय में। फर्क सिर्फ इतना था कि वह

"मेरे सर्वदा प्रथम आने का प्रतिफल था कि मैं विश्वविद्यालय के अपने प्रिय कॉलेज में प्राध्यापिका हो गयी। तुम्हारी तरह की नित-नयी किशोरियों का सान्निध्य मुझे मिलने लगा। जो कुछ स्वाध्याय से मैंने स्वयं अर्जित किया उसे बाँटने का एक अवसर मिला। मैं अपने विषय में डूबी रहती। साल-दर-साल मेरे दिन भूरे जंगली खरगोश की तरह भागते रहे। मैं ठगी-सी देखती रही। वे भविष्य के लम्बे घने घास के वन में छिपते चले गये। "

कभी अच्छे अंक नहीं लाता था और मैं प्रथम श्रेणी में पास होती थी। वह छात्र संघ के चुनावों में भाग्य आजमाया करता था, पर सफल नहीं होता था। लोग उसके आगे-पीछे काफी दिखते, लेकिन पता नहीं क्या बात थी, वह चुनाव कभी नहीं जीत सका। मुझसे सँभलकर बातें करता, पता नहीं क्यों? शायद मेरे चेहरे पर उसके प्रति अवहेलना का ऐसा भाव था, जो उसे मुझसे बात करने से रोकता होगा। अथवा मेरे अहम्मन्य चेहरे की कठोरता से डरता होगा। मेरी साथिनें उस पर फब्तियाँ कसतीं। मेरे सर्वदा प्रथम आने का प्रतिफल था कि मैं विश्वविद्यालय के अपने प्रिय कॉलेज में प्राध्यापिका हो गयी। तुम्हारी तरह की नित-नयी किशोरियों का सान्निध्य मुझे मिलने लगा। जो कुछ स्वाध्याय से मैंने स्वयं अर्जित किया उसे बाँटने का एक अवसर मिला। मैं अपने विषय में डूबी रहती। तुम जैसी किशोरियों को स्वाध्याय में ओतप्रोत करने में लगी रहती। साल-दर-साल मेरे दिन भूरे जंगली खरगोश की तरह भागते रहे। मैं ठगी-सी देखती रही। वे भविष्य के लम्बे घने घास के वन में छिपते चले गये।

सच बताऊँ, शिमोनी! तुम्हारी तरह ही विषय से दूर होती हुई, नृत्य अथवा किसी कला के प्रति समर्पित व्यक्ति को मैं दया की दृष्टि से देखा करती हूँ, कलाकारों को सब-ह्यूमन समझती आयी हूँ। नृत्य-संगीत मुझे स्वयं देखना-सुनना पसन्द है। मैं सारे कार्यक्रम देखती-सुनती हूँ। किन्तु कभी इस तर्क में नहीं पड़ी कि कला का जोखिम उठाना भी बुद्धि का तकाजा है।

"तुम कहाँ रहोगी?" मैंने आपे में आकर तुमसे पूछा था।

"होस्टल में।" तुमने उत्तर दिया था।

"ओए!" मैं फिर सोचने लगी थी कि होस्टल में तुम्हारी रैगिंग हो सकती है।

दशहरे की छुट्टियों से पहले कॉलेज में छोटे-मोटे समारोह का आयोजन होता है। छात्राएँ फैन्सी ड्रेस में दुकानें सजाती हैं और सामग्री बेचती हैं। तुम भी फूलवाली बनी थी। सिर से पैर तक फूलों से लदी सफेद वस्त्र में साक्षात् परी दीख रही थी। तुम्हारा उज्ज्वल चेहरा दमक रहा था। गाल और ठुड्डी में हँसने पर भँवरें पड़ती थीं। लाल अधरों के बीच से दमकती

शुभ्र दंत-पंक्ति तुम्हारे निराले सौन्दर्य का सहज ही इजहार करती थी। ताड़ के पत्तों की बनी रँगी हुई डाली में तुमने हरसिंगार का गजरा गूँथ रखा था। नृत्य के दिन का मुख्य अतिथि यहाँ भी मुख्य अतिथि बनकर बैठा था। वह सहज उपलब्ध व्यक्ति था। अक्सर ऐसे समारोहों की शोभा बढ़ाने पहुँच जाता। तुम पायल झनकाती गजरा लेकर उसके पास पहुँच गयी थी। उसने माला तुम्हारे हाथों से लेनी चाही थी। तुम मछली की तरह फिसल-फिसल जा रही थी। पूरे सौ का पत्ता लेकर ही वह गजरा तुमने उसे अर्पित किया था। उसने तुम्हारी पीठ थपथपायी थी। पीछे से तुम्हारी सहपाठिनियों ने तीखी फब्तियाँ कसी थीं।

"हाय! गले में क्यों नहीं डाल दिया! आज ही वह गजरा वरमाला हो जाता।" तुम्हारे कपोल रक्तिम हो आये थे और मैं तभी चौंक पड़ी थी। मेरी साथिनों ने मुझे बताया था कि "तुम्हारा वह लोकल गार्जियन है।" लड़कियाँ नाहक छेड़ती हैं। जरूर घर से तुम्हारा रिश्ता होगा-इत्यादि। लेकिन मैं तुम्हारे सम्बंध का प्रारम्भ जानती थी। वह अवसर को बखूबी पहचानता है। उठकर मेरी ओर आया और टहल-टहल कर बाकी छात्राओं की दुकानों से खरीदारी करने लगा। उस दिन उसे मैंने पहली बार लिफ्ट दिया था। उससे मुस्कराकर बातें कीं, उसके साथ गाड़ी पर बैठ कर अपने घर तक आयी। और उसे एक प्याली चाय पीने का ऑफर दिया था। मेरी माँ उसके आने से बड़ी प्रसन्न जान पड़ी थी और वह मुझसे महत्व पाकर अपने आपको धन्य समझ रहा था।

"तब चित्रा, तुम्हारी कैसी कट रही है?" यह प्रश्न उसने कई बार मुझसे किया था और मैंने कई बार उत्तर दिया था।

"ठीक-ठाक।"

"तो मैं चलू, एक जगह और अप्वाइन्मेंट है।" उसने मानो मजबूरी में उठते हुए कहा था।

"हाँ, तुम्हारा समय कीमती है।" मैंने यूँ ही-सा कह दिया था, जिसका उत्तर उसने दिया कि वह अपनी व्यस्तता को मेरे सान्निध्य में निछावर कर सकता है और तब मेरे अन्दर एक विचित्र भाव ने जन्म लिया। मैं विद्युत सिद्धांत के आधार पर उससे जुड़कर सार्थक होने लगी।

इस तरह की राह पर मैंने कभी भूल से भी कदम नहीं रखा था। इतनी उम्र के बाद जो सब मुझे प्राप्त हुआ, वह मेरे लिए उतना ही नया था, जितना किसी नवकलिका किशोरी के लिए हो सकता था। मैं पूर्ण विकसित युवती थी, फिर भी एक झिझक-सी थी, एक अनजानापन था। डूबती-उतराती मैं दूर निकल गयी थी जब मुझे अपना आपा याद आया। तभी सुना कि तुम उससे उतनी ही जुड़ी हो, जितनी मैं। मुझे अच्छा नहीं लगा। सच कहूँ, शिमोनी! मैं तो यह सब सुनने को तैयार बैठी थी। राह देख रही थी, मानो उसके चरित्र के बिखराव को जानती थी। तुम्हारी ओर निरखती उसकी दृष्टि को ताड़ सकी थी, तुम्हारे माता-पिता का झुका-झुका व्यक्तित्व देख चुकी थी और अनुभव कर चुकी थी तुम्हारी उसके प्रति आसक्ति। लेकिन मैं तब भी सचेत नहीं हुई। कहते हैं, सोये हुए को जगाया जाता है, जगे हुए व्यक्ति को जगाना

आसान नहीं है।

उसके साथ मैंने अपने आपको बंधनहीन छोड़ दिया। मेरी सारी सख्ती, बौद्धिकता, अहंभाव कहीं चले गये। मैं मात्र उसकी लास्यवती स्त्री हो गयी। यह कला भी मेरे पास है, जब इस तथ्य का उद्घाटन हुआ, तब मैं पुलक से भर उठी। दुगुने वेग से उसे पकड़कर बैठ गयी। मेरे सम्बंध अब तक कहीं प्रकट नहीं हुए थे। उसी बीच एक दिन तुम पर मेरी दृष्टि पड़ी थी। तुम्हारे चेहरे की रौनक को क्या हो गया था। आँखें वैशाख की सूखी कमलताल लग रही थीं, होठ सूखे बोगनबेलिया की तरह, केश मुरझायी माधवीलता के झुरमुट-से और रंगत पीली। कहीं दूर देखती तुम घिसटती-सी चल रही थी।

"क्या बात है, शिमोनी, तबीयत तो ठीक है?" मैंने पूछ लिया था।

"जी...जी हाँ।" तुमने कहा था।

"लेकिन मुझे नहीं लगता, क्या रात को अधिक जागकर पढ़ने लगी हो?"

"जी नहीं, बिजली ही नहीं रहती, दीदी।"

"तब तुम्हें किसी डॉक्टर को दिखाना चाहिए।"

"कैसे दिखाऊँ, कौन ले जायेगा? युनिवर्सिटी के डॉक्टर तो एक-सी दवाइयाँ दे देते हैं। दीदी, आप तो उसी मुहल्ले में रहती हैं न, जिसमें मेरे लोकल गार्जियन रहते हैं, इधर काफी दिनों से नहीं आये।" तुमने झिझकते हुए मुझसे कह दिया था।

"ठीक है, मैं उनसे पता करूँगी।" कहकर मैं कक्षा लेने चली गयी थी। लेकिन मैंने तुम्हारी तड़प को पहचान लिया था। तुम्हारी बीमारी का इलाज जान लिया था। तुम अग्निपंथ को वरण करनेवाली भोली शलभ हो, यह पता लग गया था मुझे।

> "इस तरह की राह पर मैंने कभी भूल से भी कदम नहीं रखा था। इतनी उम्र के बाद जो सब मुझे प्राप्त हुआ, वह मेरे लिए उतना ही नया था, जितना किसी नवकलिका किशोरी के लिए हो सकता था। मैं पूर्ण विकसित युवती थी, फिर भी एक झिझक-सी थी, एक अनजानापन था। डूबती-उतराती मैं दूर निकल गयी थी "

शिमोनी, मैंने उससे कुछ नहीं कहा। कह ही नहीं सकती थी। तुम नन्ही किशोरी उदासी के पर्तों को चीरकर निकल आओगी। मैंने जीवन में जिस राह पर कभी कदम नहीं रखा उस पर चल पड़ी हूँ। लौट नहीं सकती। मैं विश्वासों से भरी एक पूर्ण विकसित युवती नारी हूँ। कोमल और दर्पयुक्त शब्दों में कहूँ तो पूरा खिला हुआ फूल, जिसे तोड़कर गुलदस्ते में लगा लेने का दिन परवान चढ़ चुका है, नहीं, तो पंखुड़ी-पंखुड़ी झड़कर अलग हो जायेगी।

आज तक कोई मेरे निश्चय को डिगा नहीं सका। मैं भावनाओं में बहकर कुछ-का-कुछ कर लेनेवाली नहीं हूँ। जिस काम में जुट

जाती हूँ, उसमें सफल होती ही हूँ, मैं आलोकित किरण-पंथ की यात्री हूँ।

विवाह का मंत्र समाप्त हुआ ही था कि किसी ने मेरे कान में आकर कहा, “शिमोनी ने कई स्लीपिंग पिल्स खा लिये है।” मैं थोड़ी काँपी।

“लेकिन खतरे से बाहर है, दो-तीन दिनों तक कोमा में रह सकती है।” संवाद का दूसरा सिरा।

दूसरे दिन ही हम हनीमून के लिए निकल गये हैं। मैं नहीं जानती, इसके मन में क्या है लेकिन मन से तुम्हें ही जी रही हूँ। इसके रोमल शरीर में समाहित होता मेरा प्रलम्ब गौर शरीर सिकुड़कर नन्हा तुनक किशोर गात हो जाता है। जब इसकी बाँहें कमर के गिर्द कसती हैं, तो मैं नटी की भंगिमा में अपने को पाती हूँ।

उधर तुम कोमा में पड़ी हो, इधर मैं भी कोमा में हूँ! अब तक की अतृप्त आकांक्षाओं की अमृत-बूँद को घूँट-घूँट पीती हुई मैं इस कोमा से कभी न निकलूँ, यही कामना है।

तुम जब होश में आओ, तब मुझे माफ कर देना, शिमोनी! मैं अब बड़ी कमजोर हो गयी हूँ, मुझे निर्मम न समझना।

-उषाकिरण खान

चित्र : गिरिश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

दिनेश सिंदल

सिरोही (राजस्थान) मे जन्में और वर्तमान में जोधपुर में रह रहे दिनेश सिंदल जी कविता और ग़ज़ल विधा में सृजनशील हैं। 5 ग़ज़ल संग्रह और 4 कविता संग्रह प्रकाशित हैं। राजस्थान के हिंदी ग़ज़लकारों के संकलन 'ख़ुश्बू के रंग' के सम्पादन-संयोजन सहित दिनेश सिंदल जी की साक्षरता एवं साम्प्रदायिक सदभाव पर कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित। राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित।

ईमेल - dineshsindal4@gmail.com

ग़ज़ल

-दिनेश सिंदल

1.

ये माटी का एक खिलौना कभी-कभी
कर देता है जादू-टोना कभी-कभी

रह जाएगी खुशबू तेरे हाथों में
जग की खातिर फूल पिरोना कभी-कभी

दुनिया का हो करके रहना अच्छा है
पर अपने खुद का भी होना कभी-कभी

तुम ना बोलो यार हकीकत रातों की
कह देता है सुबह बिछौना कभी-कभी

सुख का माखन भी तुमको मिल जाना है
दुख का घर में रहे बिलौना कभी-कभी

हँसते होठों ने मुझको सीखलाया है
चुपके-चुपके नयन भिगोना कभी-कभी

साथ नहीं देते हैं 'सिंदल' क्यों मेरा
रुपया, पैसा, चांदी, सोना कभी-कभी

2.

शेर जब सिक्कों में ढल कर आ गए
हम अदब से दूर चल कर आ गए

छोड़कर हमको कहाँ जाती नदी
देखने पर्वत पिघल कर आ गए

बात तो दिल को बदलने की हुई
आप तो कपड़े बदल कर आ गए

इस क़दर आवाज़ दी बाजार ने
हादसे घर से निकल कर आ गए

जिनके होने में हमारे हाथ थे
उनके घर से हाथ मलकर आ गए

गीत के रस्ते पे शायद तुम मिलो
दूर तक हम भी टहल कर आ गए

3.

कागज़ की नावें अपनी
कैसे उतरे वैतरणी

शब्दों की रस्सी ताने
नाच रही कविता नटनी

जिसमें कोई बात न हो
बातें ऐसी क्यों करनी

वैसी ही भरनी तुमको
जैसी है तेरी करनी

ओढ़ और बिछाऊ क्या
ज्यूँ की त्यों कैसे धरनी

हँसते हैं तो जिंदा हैं
फूलों की उमर कितनी

जाने किस स्टेशन पर
अपनी ये बोगी कटनी

4.

जहाँ पर एक बंजारा मिलेगा
वहीं पर गीत इक प्यारा मिलेगा

तु अपनी आँख भर बस खोल देगा
तुझे फिर ये जहाँ सारा मिलेगा

जो बहता है तेरी मीठी ज़ुबाँ से
बहा गर आँख से खारा मिलेगा

अभी तो उम्र है चढ़ती, चढ़ेगा
उतरता प्यार का पारा मिलेगा

सुरों की दिल में होगी एक सरगम
मगर हाथों में इकतारा मिलेगा

यही है वक्त गर करना तुझे कुछ
नहीं यह वक्त दोबारा मिलेगा

जो दुनिया से करेगा प्यार 'सिंदल'
वो दुनिया से तुझे न्यारा मिलेगा

5.

करके एक इशारा तुमने
बदला खूब नज़ारा तुमने

अपनी भूल बड़ी कर डाली
करके भूल दुबारा तुमने

जिस पग पर हिम्मत तुम हारे
दावँ वहीं पर हारा तुमने

जिस पर ढाई आखर गाये
तोड़ दिया इकतारा तुमने

आईना बन कर के 'सिंदल'
हमको खूब सँवारा तुमने

6.

ख्वाबों में मधुबन रख्खा है
आंखों में सावन रख्खा है

हाथी को मन रख्खा है तो
चींटी को भी कन रख्खा है

हाथों में इकतारा मेरे
मन में एक भजन रख्खा है

माँ का मन रख्खेगा कोई
उसने सबका मन रख्खा है

सर पर हमने भी गिरधारी
दुख का गोवर्धन रख्खा है

इक पलड़े में रोटी उसके
दूजे में जोबन रख्खा है

व्यर्थ उमरिया बीती सारी
हासिल इक बचपन रख्खा है

आया है आकाश उठाकर
सर पर खूब वजन रख्खा है

तुमने फूल कहा जो 'सिंदल'
लाकर के उपवन रख्खा है

7.

वो जो सीधा सादा है
उसकी भी मर्यादा है

मैं हूँ खाली हाथ लिए
आया वक्त विदा का है

भेद नहीं अब कर पाते
ये नर है कि मादा है

डर जाता है सुनकर वो
कहता नेक इरादा है

रह जाना है यार यही
क्या थोड़ा क्या ज्यादा है

यादों की गठरी रख दें
क्यों ये बोझा लादा है

कविता हुई कलाबाज़ी
सारा खेल अदा का है

करके पूरा जाएंगे
'सिंदलजी' जो वादा है

-दिनेश सिंदल

डॉ० संतोष व्यास

बायां, जिला सीहोर, मध्यप्रदेश में जन्में तथा होशंगाबाद निवासी डा० संतोष व्यास एम.ए. हिंदी, बी.एड.; एल.एल.बी.; पी-एच.डी. डिग्री धारी हैं और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षण अधिकारी पद से सेवानिवृत्त हैं। बतौर स्वतंत्र लेखक, गीत-नवगीत, छंद, मुक्तछंद, हाइकु आदि विधाओं में सृजनशील संतोष व्यास जी संत सिंगाजी कालेज संदलपुर, जिला देवास में जनसंपर्क प्रमुख के पद पर कार्यरत हैं। सीहोर जिले के जनार्दन शर्मा कविता पुरस्कार (1986) सहित अनेक पुरस्कार/सम्मान प्राप्त हैं।

ईमेल - santoshvyashbd5@gmail.com

गीत/नवगीत

-डॉ० संतोष व्यास

पढ़ बेटी!

पढ़ बेटी!
समय-शत्रु सिर पर चढ़ आया, लड़ बेटी
तेरी ताकत सिर्फ यही है, पढ़ बेटी !

कदम-कदम पर बिखरे काँटे ही काँटे
कुछ गैरों ने, कुछ अपनों ने हैं बाँटे
राह इन्हीं में तुझे बनानी है अपनी
पहन कवच शिक्षा का, आगे बढ़ बेटी!
तेरी ताकत सिर्फ यही है पढ़ बेटी!
समय-शत्रु सिर पर...

सड़ी-गली रुढ़ियाँ बदल दे जीवन की
मर्यादा में रहकर, कर अपने मन की
संकल्पों की समिधा भरकर मुट्ठी में
तू अपने प्रतिमान नवेले गढ़ बेटी !
तेरी ताकत सिर्फ यही है पढ़ बेटी!
समय-शत्रु सिर पर...

सेवा-भाव न अपना कम होने देना
और ज़ुल्म को मत हावी होने देना
'शिक्षा' तेरा अस्त्र-शस्त्र है, सम्बल है
ले शिक्षा का दीप, सीढ़ियाँ चढ़ बेटी !
तेरी ताकत सिर्फ यही है पढ़ बेटी!
समय-शत्रु सिर पर...

तू तो दो परिवारों का उजियारा है
तेरी मुट्ठी में प्रकाश की धारा है
अंधकार के बियाबान हैं मंज़िल में
भूले से भी मत रहना अनपढ़ बेटी !
तेरी ताकत सिर्फ यही है पढ़ बेटी!
समय-शत्रु सिर पर चढ़ आया, लड़ बेटी
तेरी ताकत सिर्फ यही है, पढ़ बेटी !

–डॉ० सन्तोष व्यास

संध्या सिंह

ग्राम लालवाला, देवबंद, सहारनपुर(उत्तर प्रदेश) में जन्मी और वर्तमान में लखनऊ में निवास कर रहीं संध्या सिंह सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं। कविता, दोहे, नवगीत, ग़ज़ल, कुंडलियाँ आदि विधाओं में लगातार सृजनशील हैं। तीन काव्य संग्रह 'आखरों के शगुन पंछी, 'उनींदे द्वार पर दस्तक' एवं 'मौन की झनकार' प्रकाशित। 'अभिव्यक्ति विश्वम' द्वारा दिये गये 'अंकुर पुरस्कार २०१६' सहित कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित/ पुरस्कृत।

ईमेल - sandhya.20july@gmail.com

कविताएँ

-संध्या सिंह

शाम-ए-रुख़सत

पहियों पर रफ्तार
किसी ज़िद्दी बच्चे सी मचल रही है
रोशनी धीरे धीरे जा रही है
अँधेरे की सड़क पर
बिना कोई पदचिह्न छोड़े

शहर की ओर लौटते हुए
अट्टालिकाओं के बढ़ते ताप में
एक गाँव
हिमखंड की तरह पिघल रहा है
खिड़की पर टिकी आँखों में

कितना भयावह होता है
दूर कहीं
अपनी टहनियों से टूट कर
उड़ते पत्तों के बीच
आँधी का एहसास
भविष्य की ओर दौड़ते कदम
और चुम्बक की तरह खींचता
इतिहास

आखिरकार
पटरियों पर भागते इंजन के मुँह पर
उदासी मल कर चला ही गया
डूबता हुआ सूरज

रात अब
ओस-ओस
रिसने की तैयारी में है
रेलगाड़ी भीग रही है

2.

दीमक
कराहों ने
फाड़ कर फेंक दिए
सारे पन्ने
चीखों ने
जला कर ख़ाक कर दी
तराशी हुई कलम

ज़िंदा माँस के
छटपटाते लोथड़ों ने निगल ली
स्याही की पूरी दवात

मज़हब की दीमक
चाट गयी
शब्दकोश के सारे शब्द

सुनो कविता
तुम फिर आना अपनी बात कहने
किसी दूसरे युग में

फिलहाल दो मिनट के मौन पर
ठहरा हुआ है
वक़्त

अपशगुन के तौर पर
रुकी हुई हैं
घड़ी की तीनों सुइयाँ

अभी स्तब्ध हैं
धर्म की पटरियाँ भी

अभी इनसान की देह के ऊपर से
शोक-शताब्दी
गुज़र रही है

-संध्या सिंह

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचन्द जी हिन्दी सिनेमा के लिए कहानियाँ लिखने के उद्देश्य से जून 1934 ई. में बंबई (वर्तमान मुम्बई) गये थे। सिनेमा के गिरते स्तर को देखकर वे बहुत निराश हुए, इस पर उन्होंने एक लेख लिखा, जो उस समय प्रतिष्ठित पाकिस्तानी पत्रिका 'नक़्श' के जून, 1964 अंक में प्रकाशित हुआ था, इस दुर्लभ लेख को बाद में 'दैनिक भास्कर' समाचार पत्र ने 31 जुलाई 2005 को प्रकाशित किया था, यह दुर्लभ लेख वहाँ से साभार लेकर अनन्य के प्रबुद्ध पाठकों के लिए प्रकाशित किया जा रहा है)

-संपादक

मूर्खों के हाथ बड़ा साइंस / सिनेमा

-प्रेमचंद

"मैं जिस इरादे से बंबई आया था, उसमें से एक भी पूरा होता नज़र नहीं आया। प्रोड्यूसर जिस तरह की कहानी पर फिल्म बनाते रहे हैं, उस लीक से वे नहीं हट सकते। बेहूदा मज़ाक़ को तमाशे की जान समझते हैं। राजा-रानी, वज़ीरों की साज़िशें, नकली लड़ाई, चुंबन यही उनका मक़सद है। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित वर्ग भी देखना चाहता है, लेकिन इनको फिल्म बनाते हुए संदेह होता है कि यह चले या न चले...।

बंबई की एक फिल्म कंपनी मुझे बुला रही है। तनख्वाह की बात नहीं, ठेके की बात है। आठ हजार रुपए सालाना पर। मैं इस हालात पर पहुँच गया हूँ, जब मुझको इसके सिवा कोई चारा भी नहीं रह गया है कि या तो चला जाऊँ या अपने नॉवेल को बाजार में बेचूँ। अजंता सिनेटोन कंपनी वाले हाज़िरी की कोई क़ैद नहीं रखते। मैं जो चाहूँ लिखूँ, जहाँ चाहे चला जाऊँ...। वहाँ साल भर रहने के बाद ऐसा अनुबंध कर लूँगा कि यहीं बनारस में बैठे-बैठे मैं चार कहानियाँ लिख दिया करूँगा और चार-पाँच हजार रुपए मिल जाया करेंगे, जिससे 'जागरण' और 'हंस' दोनों मजे से चलेंगे और पैसे की तकलीफ जाती रहेगी।

मैं पहली जून 1934 में बंबई चला गया। उस कंपनी से अनुबंध कर लिया। साल भर में छह कहानियाँ उनको देनी होंगी। पत्रिकाओं से लगातार नुकसान हो रहा था, बुक सेलर से रुपए वसूल न होते थे। काग़ज़ वगैरह का भाव बढ़ता जा रहा था, सो मजबूर होकर अनुबंध

कर लिया। छह कहानियाँ लिखना मुश्किल है, क्योंकि डायरेक्टर के मशविरे से लिखना ज़रूरी है। क्या चीज़ फिल्म के लिए ज़रूरी है, इसका बेहतर फैसला वही कर सकते हैं।

मैं जिस इरादे से बंबई आया था, उसमें से एक भी पूरा होता नज़र नहीं आया। प्रोड्यूसर जिस तरह की कहानी पर फिल्म बनाते रहे हैं, उस लीक से वे नहीं हट सकते। बेहूदा मज़ाक़ को तमाशे की जान समझते हैं। इनका विश्वास अनोखा है। राजा-रानी, वज़ीरों की साज़िशें, नकली लड़ाई, चुंबन यही उनका मक़सद है। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित वर्ग भी देखना चाहता है, लेकिन इनको फिल्म बनाते हुए संदेह होता है कि यह चले या न चले...। अगर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पटकथा लिखें, तो फिल्मों में जान बढ़ जाए, मगर आप तो जानते हैं, फिल्म निम्न वर्ग के दर्शकों के लिए होती है, वो अच्छी पटकथा की कद्र नहीं कर सकते। मगर खैर! ये लोग कद्र न करें, समझने वाले तो करते हैं। 'बाजारे हुस्न' की मिट्टी पलीद कर दी, 'मिल मज़दूर' अलबत्ता कुछ अच्छी रही। यह साल (1934) तो पूरा करना ही है। क़र्ज़दार हो गया था, क़र्ज़ पट जाएगा। और कोई फायदा नहीं हुआ, तो अपने पुराने अड्डे पर जा बैठूँगा। वहाँ दौलत नहीं है, मगर सुकून जरूर है। यहाँ तो मालूम होता है कि ज़िंदगी बर्बाद कर रहा हूँ।

सिनेमा के माध्यम से पश्चिम की सारी बेहूदगी हमारे अंदर दाखिल की जा रही है और हम बेबस हैं। पब्लिक में अच्छे-बुरे की समझ नहीं है। आप अखबार में कितनी ही फरियाद कीजिए, वह बेकार है। अख़बार वाले भी साफ़गोई से काम नहीं लेते। जब एक्ट्रेस और एक्टरों की तस्वीरें धड़ाधड़ छपें और नौजवानों पर जो असर नज़र आ रहा है, इन अखबारों की बदौलत, उसमें दिन-ब-दिन तरक्की हो रही है।

मेरा फैसला हो गया। 25 मार्च 1935 को अपने शहर बनारस जा रहा हूँ। अजंता कंपनी अपना करोबार बंद कर रही है। मेरा अनुबंध तो साल भर का था और अभी तीन महीने बाकी हैं, लेकिन मैं उनकी परेशानी बढ़ाना नहीं चाहता। महज इसलिए रुका हुआ हूँ कि फरवरी और मार्च की रकम वसूल हो जाए और जाकर फिर अपने साहित्य के काम में व्यस्त हो जाऊँगा। आजकल मेरी सेहत निहायत कमजोर हो रही है। लिखना-पढ़ना छोड़ दिया है। एक साहित्यकार के लिए सिनेमा में कोई गुंजाइश नहीं है। मैं इस लाइन में इसलिए आया था कि अपनी आर्थिक स्थिति सुधार जाएगी, लेकिन अब मैं देखता हूँ कि मैं धोखे में था और फिर साहित्य की तरफ लौट रहा हूँ। साहित्य,शायरी और दूसरी कलाओं का मकसद सदा यही रहा है कि आदमी में जो बुराइयाँ हैं, उन्हें मिटाकर अच्छाइयाँ जगायी जाएँ। उसकी बुरी प्रवृत्ति को दबाकर या मिटाकर कोमल, नर्म, नाज़ुक और पवित्र जज़्बात को बेदार (जाग्रत) किया जाए। अगर सिनेमा इसी आदर्श को सामने रखकर फिल्में पेश करता, तो आज वह दुनिया को आगे बढ़ाने में सबसे शक्तिशाली सिद्ध होता।

जिस जमाने में बंबई में कांग्रेस का अधिवेशन था, अधिकतर सिनेमा हॉल खाली रहते थे और उन दिनों जो फिल्में प्रदर्शित हुईं, वो नाकामयाब रहीं। इसका सबब इसके सिवा और क्या हो सकता है, कि अवाम के बारे में जो विचार है कि वो मारकाट और सनसनी पैदा करने वाली फिल्मों को ही पसंद करती है, महज भ्रम है। अवाम उनके कमाल के क़सीदे गाए जाए, तो क्यों न हमारे नौजवान पर इसका असर होगा। साइंस एक रहमत है, मगर मूर्खों के हाथों में पड़ कर लानत हो रही है। जिन हाथों में फिल्म की क़िस्मत है, वो बदकिस्मती से इसे इंडस्ट्री समझ बैठे हैं। समाज में सुधार के बजाय शोषण कर रहे हैं। नग्नता, क़त्ल, खून और जुर्म की वारदातें, मारपीट ही इस इंडस्ट्री के औजार हैं और इसी से वह इंसानियत का खून कर रहे हैं।

मैं, बंबई में ज़िंदगी से तंग आ गया हूँ। यहाँ की आबोहवा और फ़िज़ा दोनों ही मेरे माफ़िक़ नहीं हैं। हममिज़ाज आदमी नहीं मिलता, महज ज़िंदगी में एक नया तजुर्बा हासिल करने की ग़र्ज़ से बंबई आया था। मेरी कंपनी की कोई भी फिल्म सफल नहीं हुई। इधर एक्टरों के नाकामयाब होने से और भी नुकसान हुए। चुनांचे जयराज, बिब्बो, ताराबाई जैसे एक्टर भी किनारा-कश हो गए। सिनेमा से किसी सुधार की आशा करना बेकार है। यह कला भी उसी तरह पूँजीपतियों के हाथों में है, जैसे शराब फरोशी...। इनको इससे मतलब नहीं कि पब्लिक की मानसिकता पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन्हें तो अपनी पूँजी से मतलब है। नग्नता, नृत्य, चुंबन और मर्दों का औरतों पर हमला... ये सब इनकी नज़रों में जायज़ है। पब्लिक का स्तर भी इतना गिर गया है कि जब तक ये फार्मूले न हों, तो उनको फिल्म में मज़ा नहीं आता। फिल्मों में सुधार का बीड़ा कौन उठाए? मेरे विचार में सभ्य महिलाओं का फिल्मों में आना ठीक नहीं है, क्योंकि स्टूडियों की फ़िज़ा इनके लिए नहीं है और भविष्य में भी इसमें सुधार असंभव है।

हमारे सिनेमा वालों ने पुलिस वालों की मानसिकता से काम लेकर यह समझ लिया है कि भद्दे मसखरेपन में लड़ाई और जोर-आज़माइश या नकली ऊँची दीवार से कूदने में और झूठमूट में टीन की तलवार चलाने में ही जनता को आनंद आता है और कुछ उत्तेजना व चुंबन सिनेमा के लिए उतना ही जरूरी है, जितना जिस्म के लिए आँखें...। बेशक अवाम वीरता

"साइंस एक रहमत है, मगर मूर्खों के हाथों में पड़ कर लानत हो रही है। जिन हाथों में फिल्म की क़िस्मत है, वो बदकिस्मती से इसे इंडस्ट्री समझ बैठे हैं। समाज में सुधार के बजाय शोषण कर रहे हैं। नग्नता, क़त्ल, खून और जुर्म की वारदातें, मारपीट ही इस इंडस्ट्री के औजार हैं और इसी से वह इंसानियत का खून कर रहे हैं।

भरी जवांमर्दी देखना चाहती है; इश्क़, मुहब्बत भी उनके लिए आकर्षण रखता है, लेकिन यह ख्याल गलत है कि उत्तेजना व चुंबन के बगैर मुहब्बत का इज़हार हो नहीं सकता और सिर्फ तलवार चलाना ही जवाँमर्दी है या बिना किसी जरूरत के गीत पेश करना जरूरी है। इन बातों से ही अवाम को खुशी मिलती है, तो यह इंसानियत की गलत कल्पना है।

-प्रेमचन्द

(प्रतिष्ठित पाकिस्तानी पत्रिका 'नक़्श' के जून, 1964 अंक में प्रकाशित इस दुर्लभ लेख को दैनिक भास्कर समाचार पत्र ने 31 जुलाई 2005 को प्रकाशित किया था, वहाँ से साभार)

...

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

लोक जीवन को यदि वास्तव में देखना हो तो लोक गीतों तक पहुँचना होगा क्योंकि- “साहित्य की दुनिया में लोक-जीवन छन-छनकर आता है। इसलिए साहित्यिक गीत मँजे-सुधरे होते हैं और उनकी चमक-दमक गिने-चुने लोगों को ही आसानी से अपनी ओर खींच सकती है। पर इस माँजने-सुधारने और छानने में जीवन की बहुत सी हरियाली भी कट-छँट कर बाहर ही छूट जाती है, जिससे साहित्य के गीतों में उबले-छने पानी का सा स्वाद होता है, जब कि लोक-गीतों में ताजे पानी का आनन्द आता है। लोकगीत, लोक-जीवन की जीती-जागती संपत्ति हैं।” -(श्री शंभू प्रसाद बहुगुणा, एम ०ए०, लोक संस्कृति अंक पृष्ठ 193)

इस अंक में अवधी बोली के लोकप्रिय कवि वंशीधर शुक्ल का एक लोकगीत प्रकाशित कर रहे हैं। वंशीधर शुक्ल का जन्म लखीमपुर से 10 किलोमीटर दूर स्थित ग्राम मन्योरा में सन् 1904 में बसंत पंचमी के दिन हुआ था। पिता से विरासत में मिली कवित्व शक्ति धीरे- धीरे प्रकट होने लगी। सन् 1924 से उन्हें कवि सम्मेलनों में आमंत्रित किया जाने लगा। उनके समकालीन साहित्यकारों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, हरिवंश राय बच्चन, गोपाल सिंह नेपाली, श्याम नारायण पांडेय, जानकीवल्लभ शास्त्री आदि का मंच पर बोलबाला था परन्तु वंशीधर जी का अपना अलग स्थान था। कवि सम्मेलनों में उनकी माँग सर्वाधिक थी। लखीमपुर क्षेत्र में अपने गाँव के चारों ओर शुक्ल जी ‘कवि जी’ के नाम से जाने जाते थे। सन् 1978 में उ0 प्र0 हिंदी संस्थान ने उन्हें मलिक मोहम्मद जायसी (नामित) पुरस्कार से सम्मानित किया। वे अप्रैल सन् 1980 में परलोकवासी हो गये।

शुक्लजी ने ग्राम्य जीवन, ग्राम्य संस्कृति और ग्राम्य प्रकृति का यथार्थ चित्रण किया। गाँव के जीवन का लोक मनोहारी चित्रण उनके इस अवधी लोकगीत में देख सकते हैं।

-संपादक

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

अवधी लोकगीत-

अपनी राम मड़ैय्या

जहाँ बयारि लगावै बढ़नी जुगुनू दिया दिखावैं
सुअर, सियार, चील्हि, गिलहिरिया
कूरा सैंति उठावैं
चिरई, कौवा का का कहिके
जागि जगाय सोवावैं
उइ-उइ अथै-अथै के सविता
दिन अउ राति बतावैं
जहाँ बनरवा डाका डारै चोरी करै बिलैय्या
हुवैं बनी है राम सहारे अपनी राम मड़ैय्या।

जहाँ जाडु मुठियन मा बाँधा बरफ जमी छपरन पै
राति ग्यउस बीते पयार मा मौत टँगीं खुटियन पै
दसौ दिसा गरमाय गरम है
जेठ दुपहरे झौंकै
सुर्ज चूसि के धरती भिजवइ
धूरि उड़े नभ छौंकै
सावन रोवै चैतु हँसावै बीते छप्पक छैय्या
हुवैं घास मा बनी फूस की अपनी राम मड़ैय्या।

जहँ गाइन कै घंटा ठनकैं, भैसिन का हुंकारा
घोड़वा हीसैं बधवा डहुँकैं गदहा देय नगारा
कुक्कुर उल्लू बने पहरुवा
निहुकी-निहुकि जगावैं
पीपर बरम, नीम पर भुइयाँ जिन्द परेत पुजावैं
जहाँ बजै रैदास की डफली
नाचैं कुँवर कन्हैया
हुवैं बनी निवियन के भीतर अपनी राम मड़ैय्या।

कहूँ-कहूँ बाँसन के झुरमुट नागफनी चौधारा
मूजा, बेलझर, काँट-करौंदा
रुँधि रहे गलियारा
जहाँ बसंत चुवावै महुवा जेठु तपै जलु बरसै
सरद कमल हेमंतु गेंद पर सिसिर कुसुम पै विलसै
जलचर बनचर करैं किलोलैं
नाचैं सुवा-चिरैय्या
हुँवै बनी सूना दुनिया मा अपनी राम मड़ैय्या।

-वंशीधर शुक्ल

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

डॉ. देवकीनंदन शर्मा

गोकुलनगर, नैनीताल (उत्तराखंड) में जन्में तथा गुलावठी, बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) निवासी एवं एम ए (हिन्दी), पी. एच. डी. धारी डॉ. देवकीनन्दन शर्मा, देवनागरी पी जी कालेज गुलावठी से प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। भारत सरकार के 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' एवं गृह मंत्रालय (राजभाषा सलाहकार समिति) की विभिन्न योजनाओं से जुड़े डॉ. देवकीनन्दन शर्मा 'शुभम् साहित्य', कला एवं संस्कृति संस्थान के संस्थापक/अध्यक्ष रूप में 1991 से अनवरत संलग्न हैं। 'गुरवे नमः' सम्मान ग्रंथ सहित कविता, आलेख तथा आलोचना की लगभग 15 पुस्तकें प्रकाशित। अनेक साहित्यिक संस्थानों द्वारा सम्मानित।

ईमेल - dev_hindi@yahoo.com

कविताएँ

-डॉ. देवकीनंदन शर्मा

1. ज़िन्दगी बरसी

आखिर
बरस ही गए
असाढ़ के बादल,
बाँच ही दी
जलधारों ने
हलधरों की पाती...

बूँदों ने
पेड़ों को नहलाया
हवाओं को सहलाया
जलतरंग क्या बजायी
मोरों ने पंखों को फैलाया
पपीहों ने पिउ-पिउ गाया...

बागों ने
मल्हारों की महफिल सजायी
कजरी भी कसमसायी
धरती ने क्या ली अंगड़ाई
'होरी' की मेहनत रंग लायी
'धनिया' की आस ने पेंग बढ़ायी ...

बादल क्या बरसा
कन-कन सरसा
मन-मन हरसा
कविता बरसी
ग़ज़ल बरसी

2. गुल्लक

बचपन में
अम्मा ने
रामलीला मेले में

गुल्लक दिलायी थी,
साथ ही
हिदायत भी दी थी
बचाकर पैसे
इसमें जरूर डालना।

जैसे-जैसे
उसमें पैसे बढ़ने लगे
वैसे-वैसे
मिट्टी की सौंधी गंधवाली
वह गोल मटोल गुल्लक
दिलो-जान से प्यारी लगने लगी,
मैं बजा-बजाकर देखता
दिल बल्लियों उछलता
ख्वाहिशें कुलाँच भरतीं।

आखिर
दीवाली आते-आते
गुल्लक भर गयी,
इकट्ठे पैसों से
खिलौने-पटाखे खरीदे
जमकर दीवाली मनायी
अब
न वो प्यारी अम्मा है
न वो शोख बचपन
न वो मिट्टी की गुल्लक,
मगर उस जमा पूँजी
का मर्म समझ आ रहा है।

समय-शाख पर खिले
यादों के फूल कह रहे हैं,
दोस्त!

ज़िन्दगी भी तो एक गुल्लक ही है,
इसमें जतन से कमाये रिश्तों को
सहेजेंगे-सम्हालेंगे
तो वक़्त पड़ने पर
बाँहें फैलाकर
यही कहेंगे
परेशान क्यों होते हो
हम हैं न !

-डॉ देवकीनंदन शर्मा

चित्र : गिरीश चंद्र बेहरा / पेपर पर जल रंग

अशोक कुमार सिन्हा

बिहार संग्रहालय, पटना में अपर निदेशक श्री अशोक कुमार सिन्हा, बिहार की लोककलाओं एवं हस्तशिल्प के संरक्षण व संवर्धन में विशेष रुचि रखते हैं। कला और साहित्य पर अब तक आपकी 36 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, साहित्यिक उपलब्धियों के लिए सिन्हा को बिहार सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत/सम्मानित किया जा चुका है।

ईमेल - aksinhajdi@gmail.com

बावन बूटी कला के प्रकाश स्तम्भ : कपिलदेव प्रसाद

-अशोक कुमार सिन्हा

"नालन्दा के बुनकरों ने बुनकरी में एक नयी कला शैली का इजाद किया। उन्होंने करघे पर बौद्ध धर्म से जुड़े 52 बूटियों (चिह्नों) वाले कपड़ों की बुनाई शुरू की। 52 बूटियाँ होने के कारण उसे बावन बूटी कला के नाम से पुकारा जाने लगा। बौद्ध धर्मावलंबियों को वह पसंद आने लगा। जानकार बताते हैं कि गौतम बुद्ध के समय में भी हथकरघे पर कपड़े की बुनाई होती थी। ..."

करीब 6 दशक पहले की बात है। बिहार के नालन्दा जिले में पिता-पुत्र के बीच बातचीत हो रही थी। आठ वर्षीय पुत्र अपने बुनकर पिता से परिवार में परम्परा से चली आ रही बावन बूटी कला का इतिहास जानना चाह रहा था। पिता का कहना था कि उनके परिवार में यह कला सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। जब तक आधुनिक कपड़ा मिलों का आविष्कार नहीं हुआ था, हथकरघे से बुने गए कपड़े पर अलग-अलग रंग के धागों से बनाई जाने वाली बावन बूटी कला का जबर्दस्त 'क्रेज' था। क्षेत्र के बुनकरों को सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल थी। इतना ही नहीं बावन बूटी कपड़ों की एडवांस बुकिंग तक होती थी। पिता बता रहे थे कि उनके पिता शनिचर ताँती का भी बावन बूटी कला में बड़ा नाम था और उनके द्वारा निर्मित परदे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के कार्यकाल में राष्ट्रपति भवन में भी लगाये गये थे। उसी क्रम में उन्होंने अँग्रेजी शासन काल के दौरान की एक रोचक घटना से भी अपने बेटे को अवगत कराया। जिले का

एक बड़ा अँग्रेज अफसर शनिचर ताँती का बहुत बड़ा मुरीद था। एक बार उसने शनिचर ताँती को सम्मानित करने का निर्णय लिया। सम्मान के तौर पर सोने का मेडल या दस रुपया, दोनों में से किसी एक का चुनाव शनिचर ताँती को करना था। उन दिनों दस रुपए की रकम बहुत बड़ी होती थी। इसलिए शनिचर ताँती ने सोने के मेडल के बदले दस रुपया लेना स्वीकार किया था। पिता-पुत्र के बीच उनके इस निर्णय पर मत-मतान्तर शुरू हो गया। पिता उनके निर्णय को सही ठहरा रहे थे, जबकि पुत्र का कहना था कि अगर उसके जीवन में कभी ऐसा अवसर मिलेगा तो वह पैसे के बजाए मेडल लेना ही पसंद करेगा। यह वह दौर था, जब बावन बूटी कला के कद्रदानों की संख्या दिनों-दिन कम होती जा रही थी और पहली कतार में बैठे कुछेक कला समीक्षक ''बावन बूटी कला की मौत" की ढ़ोलबजाई भी करने लगे थे। इसलिए पिता अपने पुत्र की बचकाना सोच पर मन ही मन मुस्करा रहे थे। लेकिन 05 अप्रैल, 2023 को वह अवसर भी आया, जब बावन बूटी कला को मूल रूप में जीवित और संरक्षित रखने के लिए उस बच्चे को तालियों की गड़गड़ाहट के बीच राष्ट्रपति भवन में कला के क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ सम्मान 'पद्मश्री' से सम्मानित किया जा रहा था। वह बच्चा और कोई नहीं, बल्कि नालन्दा जिले के बसवन विगहा गाँव का कपिलदेव प्रसाद था।

कपिलदेव प्रसाद का जन्म एक निम्नवर्गीय बुनकर परिवार में 05 अगस्त, 1955 को हुआ था। इनके पिता हरि ताँती और माता का नाम फुलेश्वरी देवी था। परिवार की आर्थिक स्थिति खस्ताहाल रहने के कारण कपिलदेव प्रसाद का बचपन कठिन परिस्थितियों में गुजरा। छोटी-छोटी जरुरतों के लिए भी उन्हें तकलीफ झेलनी पड़ती थी। इसलिए कपिलदेव प्रसाद की प्रवृति शुरू से ही संघर्षशील और जुझारू बनती

"वर्ष 1982 मे श्री कपिलदेव प्रसाद बिहारशरीफ क्षेत्रीय हस्तशिल्प बुनकर सहकारी संघ लिमिटेड के निदेशक मंडल में चुने गए। श्री प्रसाद के प्रयास से उनके गाँव बसवन बिगहा में निर्यात निगम के माध्यम से कॉमन वर्क शेड का निर्माण हुआ। उस कर्मशाला में हथकरघे भी लगाये गए। स्थानीय बुनकर उसमें काम करने लगे। कपिलदेव इतने पर ही नहीं रुके। कपिलदेव प्रसाद की पहल पर राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम के तहत बिहारशरीफ में प्रखंड स्तरीय क्लस्टर का निर्माण हुआ। ..."

चली गयी। तीसरी कक्षा तक की उनकी शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। उससे आगे की पढ़ाई की सुविधा गाँव में नहीं थी। अतः चौथी कक्षा में उनका नामांकन बिहार गर्वनमेंट अर्द्ध सामयिक बुनाई विद्यालय, बिहारशरीफ में करा दिया गया। उस समय तक बिहारशरीफ एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में बड़ी संख्या में बुनकरी का काम होता था। इसी वजह से बिहार सरकार ने इस इलाके में इस विद्यालय की स्थापना की थी। विद्यालय में सातवीं तक की निःशुल्क पढ़ाई होती थी, जहाँ बच्चे नियमित पढ़ाई करते हुए बुनकरी, का ज्ञान भी अर्जित करते थे। दिन के कुल 8 घंटे में 4 घंटे तक पाठयक्रम की शिक्षा और शेष 4 घंटे में बुनकरी का प्रशिक्षण दिया जाता था।

सातवीं की पढ़ाई पूरी करने के बाद कपिलदेव प्रसाद की इच्छा आगे की पढ़ाई करने की थी। लेकिन आर्थिक स्थिति बेहद खराब हो चली थी। भरा-पूरा परिवार था। माता-पिता और पाँच बहनों के बीच ये अकेले भाई थे। जैसे-तैसे परिवार चल रहा था। परिणाम यह हुआ कि इस आर्थिक तंगी के कारण वे हाई स्कूल में दाखिला नहीं ले सके। घर में करघा था। पिता बुनकरी का काम करते थे। इसलिए कपिलदेव प्रसाद ने दस वर्ष की किशोरावस्था में ही पिता के काम में हाथ बँटाने का निर्णय लिया। इरादा था कि ज्यादा भले ही न कमा सके, पर किसी पर बोझ तो न बनेंगे। बुनकरी कला का प्रारंभिक ज्ञान तो इन्हें बुनाई विद्यालय में हासिल हो चुका था, लेकिन बावन बूटी कला की बुनियादी चीजों का ज्ञान इन्होंने अपने पिता से ग्रहण किया। घर की आमदनी बढ़ाने के ख्याल से इनकी पाँचों बहनें भी बावनबूटी से जुड़ गयीं। फिर भी बड़ी मुश्किल से उनका गुजारा हो पाता था। वर्षों तक यह संघर्ष चलता रहा। खाली जेब और खाली पेट कई रातें गुजारी। पर हारे-थके नहीं। खूब बुनकरी करते थे। बहुत कम समय में कपिलदेव प्रसाद ने बुनकरी में कुशलता प्राप्त कर ली। उस समय तक बावन बूटी कला में पौराणिक और बौद्ध कालीन प्रतीकों को कपड़ों पर उभारा जाता

था। कपिलदेव ने परम्परा से अलग हटकर कुछ नया करने का प्रण लिया। कपिलदेव प्रसाद ने उन प्रतीकों को लेकर कई प्रयोग किये और उसे समृद्ध किया। ये बारीकी से नाप-तौल कर बूटी को कपड़े पर बिनने लगे। इनका काम पूर्ववर्ती और समकालीन बुनकरों से थोड़ा भिन्न होता गया और उसमें नए रूप और आस्वाद आ गये। वह लोगों को पसंद आने लगा।

अब कपिलदेव प्रसाद युवावस्था में पहुँच चुके थे और उनमें सोचने-समझने की शक्ति विकसित हो गई थी। उस समय तक बावन बूटी कला में काम करने वाले बुनकरों मे ज्यादा संख्या अंसारी (मुस्लिम) और ताँती (हिन्दू) की थी। कपिलदेव प्रसाद ने महसूस किया कि सहयोग समितियों के माध्यम से अंसारी समुदाय के बुनकर अच्छी आमदनी अर्जित कर रहे हैं, जबकि ताँती जाति के बुनकर नाकामी की चादर ओढ़े समय के अँधेरे में गुम होते चले जा रहे हैं। अंसारी समुदाय के बुनकरों की देखा-देखी कपिलदेव प्रसाद ने 25 वर्ष की उम्र में ही अपने गाँव बसवन बिगहा के बुनकरों को संगठित कर 'प्राथमिक बुनकर सहयोग समिति' का गठन किया कर लिया। समिति का काम चल निकला। बुनकरों को सरकारी योजनाओं की जानकारी मिलने लगी। बिहार स्टेट हैण्डलूम कारपोरेशन और बिहार राज्य निर्यात निगम के माध्यम से इस समिति को सरकारी आर्डर भी मिलने लगे।

वर्ष 1982 मे श्री कपिलदेव प्रसाद बिहारशरीफ क्षेत्रीय हस्तशिल्प बुनकर सहकारी संघ लिमिटेड के निदेशक मंडल में चुने गए। श्री प्रसाद के प्रयास से उनके गाँव बसवन बिगहा में निर्यात निगम के माध्यम से कॉमन वर्क शेड का निर्माण हुआ। उस कर्मशाला में हथकरघे भी लगाये गए। स्थानीय बुनकर उसमें काम

"जैक्वार्ड और डॉबी लूम के आविष्कार के बाद वस्त्रों की दुनिया में नयी क्रांति आ गई है क्योंकि इसमें डिजाइन का काम ज्यादा सहज और आसान हो गया है। साथ ही समय की भी बचत होती है। लेकिन बावन बूटी के कलाकार परम्परागत करघे पर ही काम करना पसंद करते है।..."

करने लगे। कपिलदेव इतने पर ही नहीं रुके। कपिलदेव प्रसाद की पहल पर राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम के तहत बिहारशरीफ में प्रखंड स्तरीय क्लस्टर का निर्माण हुआ। क्षेत्र के 200 से ज्यादा बुनकरों को इसका लाभ मिला। बाद के वर्षों में कपिलदेव प्रसाद बिहार राज्य हथकरघा बुनकर सहकारी संघ के निदेशक मंडल के लिए भी चुने गए।

कपिलदेव प्रसाद के व्यक्तित्व को ठीक से जानने-समझने के लिए बावन बूटी कला के इतिहास और वर्तमान को भी जानना-समझना आवश्यक है। भारतवर्ष वस्त्र परम्परा के लिए सम्पूर्ण विश्व में ख्यातिमान रहा है। हालांकि वस्त्रों और परिधानों के बहुत पुराने नमूने उपलब्ध नहीं है क्योंकि भारत जैसे नम और गर्म वातावरण में कपड़े जैसी क्षतिमान वस्तु को बहुत अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। लेकिन मोहनजोदडों की खुदाई में सूतों की प्राप्ति से यह स्पष्ट हो गया है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता में वस्त्र परम्परा का शुभारम्भ हो गया था। देश के अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों और परिधानों की परम्परा थी और उनमें नालन्दा में निर्मित होने वाले बावन बूटी कपड़ों का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

विभिन्न विवरणों और आन्तरिक संदर्भों से यह पता चलता है कि नालन्दा में बौद्ध काल से ही बावन बूटी की परम्परा रही है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में भी नालन्दा में निर्मित होने वाले बावन बूटी का वर्णन मिलता है। राजगीर (नालन्दा) महात्मा बुद्ध की तपोभूमि रही है। वे बार-बार राजगीर आते थे और यहाँ उन्होंने वर्षों तपस्या की थी। स्वाभाविक रूप से राजगीर में बौद्ध विहारों की बड़ी संख्या थी, जिसमें बौद्ध भिक्षु और बौद्ध भिक्षुणियाँ निवास करती थीं। उनके पहनावे के लिए सदियों पूर्व नालन्दा के बुनकरों ने बुनकरी में एक नयी कला शैली का इजाद किया। उन्होंने करघे पर बौद्ध धर्म से जुड़े 52 बूटियों (चिह्नों) वाले कपड़ों की बुनाई शुरु की। 52 बूटियाँ होने के कारण उसे बावन बूटी कला के नाम से पुकारा जाने लगा। बौद्ध धर्मावलंबियों को वह पसंद आने लगा। जानकार बताते हैं कि गौतम बुद्ध के समय में भी हथकरघे पर कपड़े की बुनाई होती थी। बौद्ध भिक्षुणियाँ प्रायः तीन तरह का वस्त्र धारण करती थी- वासस (साड़ी), स्तन पट्ट तथा उत्तरीय (दुपट्टा)। जबकि पुरुष दो तरह के वस्त्र धारण करते थे- तहमद (लुंगी अथवा धोती) तथा उपवसन (चादर अथवा शॉल)। इन्हें चीवर

कहा जाता था। चीवर कपास से बनता था तथा पीला या गेरुए रंग का होता था। जातक काल में बावन बूटी कला को पर्याप्त ख्याति मिल चुकी थी। जानकारों का मानना है कि मध्य काल में भी नालन्दा बावन बूटी कपड़ों का प्रमुख केन्द्र अवश्य रहा होगा। यह स्थिति मुगल काल और ब्रिटिश शासन काल में भी बनी रही थी। नालन्दा के बड़े-बूढ़े बताते हैं कि आजादी के बाद के शुरुआती दशक तक बावन बूटी कपड़े का जबर्दस्त क्रेज था। शादी-ब्याह के मौके पर दुल्हन के लिए बावन बूटी साड़ी पहनना अनिवार्य होता था। नालन्दा के ग्रामीण क्षेत्रों में यह कहानी सुनने को मिलती हैं कि वर पक्ष अगर किसी कारणवश दुल्हन के लिए बावन बूटी साड़ी लेकर नहीं पहुँचता था, तो बारात लौटा दी जाती थी। कपिलदेव प्रसाद ने यह कहानी बचपन में अपने दादी के मुँह से सुनी थी।

कपिलदेव प्रसाद कहते हैं कि बावन बूटी कला हमारी कई पीढ़ियों के परिश्रम का फल है। इसमें तसर और सूती के कपड़ों को करघे से तैयार किया जाता है और मोटिव (बूटी) भी करघे पर ही बुने जाते हैं। बूटियों को उभारने के लिए एक अतिरिक्त शटल का प्रयोग किया जाता है। यह करघे के खड़े तानो से तैयार किया जाता है। पहले बावन बूटी के माध्यम से 6 गज की साड़ी या परदे पर बौद्ध धर्म की कलाकृतियों को उकेरा जाता था। लेकिन बाद में टेबल क्लॉथ, साड़ी, चादर, शॉल, स्कार्फ, दुपट्टा एवं परदा इत्यादि पर भी एक जैसे डिजाइन को 52 बार बूटियों (मोटिव) के रूप में बनाया जाने लगा। यह बूटी बहुत ही महीन होती है और अलग-अलग रंग के धागों की मदद से उसे तसर या सूती कपड़े पर टाँका जाता है। उन बूटियों में बौद्ध धर्म के प्रतीक चिह्नों की बहुत महीन कारीगरी की जाती है। कमल के फूल, पीपल के पत्ते, बोधि वृक्ष, त्रिशूल, सुनहरी मछली, पारसोल, बैल, शंख, धर्म का पहिया और

स्तूप जैसे बौद्ध धर्म के प्रतीकों का बूटी के रूप में निर्माण होता है। प्रत्येक बूटियाँ दस से बारह इंच की दूरी पर बनाई जाती है। लेकिन ज्यादातर कारीगर उन बूटियों के बीच की दूरी को अपने हिसाब से घटा या बढ़ा देते हैं। चूकिः बावन बूटी के कपड़ों में बौद्ध धर्म की झलक दिखती है। इसलिए यह कपड़ा बौद्ध धर्मविलंबियों का पसंदीदा है। लेकिन मुलायमियत, झीनेपन और उस पर बूटियों की महीन कारीगरी के कारण यह कला अन्य धर्मावलंबियों के बीच भी जनप्रिय है।

कुछ बुनकरों के मुताबिक 'बावन' शब्द की जड़ें भारतीय पुराण और परम्परा से जुड़ी है। भगवान विष्णु का बामन अवतार हुआ था। उनका आकार 52 ऊँगलियों के बराबर था। लेकिन, उन्होंने प्रहलाद के पौत्र राजा बलि का घमंड तोड़ने के लिए तीन डगों में ही पूरा भूलोक (ब्रह्माण्ड) को नाप दिया था। उनके इसी रूप की कथा को बावन बूटी के बुनकर साड़ी चादर या परदा पर करते हैं। समय के साथ बावन बूटी कला में आधुनिकता का प्रवेश होता गया है और उसमें नये-नये डिजाइन आते रहे हैं।

जैक्वार्ड और डॉबी लूम के आविष्कार के बाद वस्त्रों की दुनिया में नयी क्रांति आ गई है क्योंकि इसमें डिजाइन का काम ज्यादा सहज और आसान हो गया है। साथ ही समय की भी बचत होती है। लेकिन बावन बूटी के कलाकार परम्परागत करघे पर ही काम करना पसंद करते है। कपिलदेव प्रसाद का कहना है कि जैक्वार्ड और डॉबी लूम में अक्सर धागा टूट जाता है, जिसे काटना पड़ता है। उससे कपड़ा खराब होने का डर बना रहता है। इसलिए नालन्दा के बुनकर हथकरघे पर ही काम करना पसंद करते हैं। परंपरागत करघे पर बुने गए कपड़े मुलायम होते हैं और अपनी कारीगरी और सौन्दर्य के कारण लोगों का मन मोह लेते हैं। बसवन बिगहा गाँव बावन बूटी शिल्प का प्रमुख निर्माण केन्द्र है।

आज से तीन-चार दशक पहले तक नालन्दा जिले में हथकरघों की संख्या लगभग चार हजार के करीब थी, जो अब घटकर सिर्फ 200 के करीब रह गयी है। इसी तरह बुनकरों की संख्या भी सैकड़ों में सिमट गई है। कारण एक नहीं, अनेक हैं। मशीन युग के प्रादुर्भाव से कपड़ों की पुरातन परम्पराएँ तेजी से ओझल हो रही है, उसका प्रभाव बावन बूटी पर भी पड़ा है। बुनकरी का इल्म सिखाने वाला सरकारी बुनकर स्कूल भी 1990 में बंद हो गया। कपिलदेव प्रसाद कहते हैं कि बावन बूटी कपड़ों की माँग बौद्ध धर्मावलंबी देशों में ज्यादा है। पहले हम लोग माल तैयार करते थे और वह बिहार स्टेट हैण्डलूम कारपोरेशन एवं बिहार स्टेट एक्सपोर्ट कारपोरेशन के माध्यम से विदेशों में निर्यात होता था। लेकिन दोनों निगमों के बंद हो जाने से बावन बूटी का निर्यात कम हो गया है। कपिलदेव प्रसाद के मुताबिक जब तक नालन्दा में बड़े पैमाने पर बावन बूटी का काम होता था, उसका धागा स्थानीय स्तर पर बिहारशरीफ में ही उपलब्ध हो जाता था। लेकिन अब उसे गया के मानपुर या फिर भागलपुर से मँगाना पड़ता है।

लेकिन तमाम कठिनाइयों के बावजूद

कपिलदेव प्रसाद ने हिम्मत नहीं हारी। जीवनभर संघर्ष करते रहे, दुखों को झेलते रहे। फिर भी हताश नहीं हुए। निरन्तर नूतन प्रयोग कर लुप्त होती बावन बूटी कला को जीवित और संरक्षित करने में लगे रहे। कहते हैं कि नेक इरादे से की गई कोशिश को फरिश्तों का भी साथ मिलता है। कपिलदेव प्रसाद के साथ भी यही हुआ। उन्हें सुप्रसिद्ध डिजाइनर राजीव सेठी की संस्था 'एसियन हेरिटेज फाउंडेशन' और श्रीमती महाश्वेता महारथी का साथ मिला। कपिलदेव प्रसाद की धर्मपत्नी लाखो देवी और पुत्र सूर्यदेव प्रसाद भी उनके मिशन को पूरा करने में लगे रहे। इसलिए सरकारी सहायता न मिलने के बावजूद अगर बावन बूटी कला आज जीवित है तो उसका श्रेय कपिलदेव प्रसाद को है। कपिलदेव प्रसाद ने यह साबित कर दिया है कि मेहनत पर यकीन करने वाले के लिए कोई भी मंजिल नामुमकिन नहीं है। बस निरंतर आगे बढ़ते रहने का धैर्य और हौसला बनाये रखने की आवश्यकता है।

बावन बूटी कला के उत्थान और प्रचार-प्रसार के प्रति अभूतपूर्व समर्पण की वजह से कपिलदेव प्रसाद को अब तक विभिन्न सम्मानों-पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है। पुरस्कार और सम्मान तो जैसे स्वयं चलकर इनके पास पहुँचते रहे हैं। उनमें सन् 93-94 में वस्त्र मंत्रालय, भारत सरकार की बुनकर सहकारी समिति का राष्ट्रीय पुरस्कार, 2001-02 में हथकरघा एवं रेशम निदेशालय, बिहार सरकार द्वारा बुनकर पुरस्कार, 2004-05 में तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, दिल्ली द्वारा अक्षत नमन पत्र भारत सरकार के

वस्त्र मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय योग्यता प्रमाण-पत्र और रेमंड कंपनी, मुम्बई द्वारा प्रदत्त सम्मान प्रमुख है। 05 अप्रैल, 2023 को इन्हें कला के क्षेत्र में भारत सरकार के श्रेष्ठ सम्मान 'पदमश्री' से भी अलंकृत किया जा चुका है। मौजूदा दौर में जब लोक-कला के हर पक्ष पर आधुनिकता हावी हो रही है, बावन बूटी जैसी पारंपरिक लोककला के जीवंत रंग को सहेजना आवश्यक है। ऐसे में कपिलदेव प्रसाद को पदमश्री सम्मान से नवाजा जाना सुखद है। जाहिर है कि पदमश्री सम्मान के बाद लुप्त हो रही बावन बूटी की चर्चा अब वैश्विक स्तर पर होने लगी है। बावन बूटी के कलाकृतियों की डिमांड फिर से बढ़ने लगी है। कहीं न कहीं, यह बावन बूटी जैसी समृद्ध पारंपरिक कला के जीवंत रंग को दुनिया भर में पहुँचाने वाली बात है।

-अशोक कुमार सिन्हा

सुधीर पटवर्धन

कला जगत में ”जन का चित्रकार” के रूप में प्रतिष्ठित सुधीर पटवर्धन का जन्म 1949 में पुणे, महाराष्ट्र में हुआ था। उनके पिता शस्त्र बनाने वाली एक सरकारी ऑर्डिनेंस फैक्ट्री में काम करते थे। 1972 में उन्होंने पुणे के आर्म्ड फोर्सेज मेडिकल कॉलेज से मेडिसिन में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। वह 1973 में मुंबई चले आये और 1975 से 2005 तक ठाणे में रेडियोलॉजिस्ट के रूप में काम किया। 2005 के बाद वह पूर्णकालिक कलाकार बन गये। उनके कैनवस में शहर-दृश्य प्रमुखता से दिखाई देता है, और शहरी मध्यम वर्ग और गरीबों की पीड़ा को दर्शाता है।[2] पटवर्धन की कृतियाँ राष्ट्रीय आधुनिक कला गैलरी, नई दिल्ली और मुंबई के स्थायी संग्रह में हैं; रूपंकर संग्रहालय, भोपाल; किरण नादर कला संग्रहालय, नई दिल्ली, जहांगीर निकोलसन आर्ट फाउंडेशन, मुंबई; पीबॉडी एसेक्स संग्रहालय, सेलम, मैसाचुसेट्स और अन्य प्रमुख निजी और सार्वजनिक संग्रह।

ईमेल - sudhir.patwardhan@gmail.com

गिरीश चंद्र बेहरा

उड़ीसा में जन्मे गिरीश चंद्र बेहरा युवा चित्रकार एवं रिसर्च स्कॉलर हैं। उनकी पेंटिंग ‘व्हाइट स्मोक’ जिसके लिए उन्हें ललित कला का सर्वोच्च राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। उनकी यह पेंटिंग आर्द्रभूमि चिल्का के आसपास के पारिस्थितिक तंत्र के सामाजिक-राजनीतिक निहितार्थ पर आधारित है। 2018-19 में संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली *C.C.R.T.* द्वारा रिसर्च ग्रांट फ़ेलोशिप, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक के साथ मास्टर ऑफ फाइन आर्ट, (एम.एफ.ए.) और उत्कल यूनिवर्सिटी ऑफ कल्चर, भुवनेश्वर, ओडिशा से पेंटिंग में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की डिग्री पूरी की। वर्तमान में वह ललित कला गढ़ी आर्टिस्ट स्टूडियोज में रहकर नई दिल्ली स्वतंत्र रूप से कला सृजन कर रहे हैं।

ईमेल - girishchandra.art@gmail.com

चित्र और चित्रकार

चित्रकार : गिरीश चंद्र बेहरा
Title: wondering island, (detailed of middle pannel)
Medium: water color, graphite on canson paper 300gsm
Size: 150 cm X 100 cm each panel